इकाई .2 ऋग्वेद –परिचय ,समय, आख्यान तथा ऋग्वेद कालीन धर्म, संस्कृति एवं समाज

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना :

वेद तो वस्तुतः एक ही प्रकार का होता है। परन्तु स्रूप भेद के कारण तीन प्रकार का बतलाया जाता है– ऋक्, यजुः और साम। अथर्व को इनसे अलग रखा जाता है। वेद हमारी संस्कृति के मूल स्त्रोत है हमारी सभ्यता को उच्चकोटि तक पहुंचाने वाले ग्रंथरत्न है, जिनकी विमल–प्रभा देश तथा काल के दुर्भेद्य अवारण का छिन्न–छिन्न कर आज भी विश्व के अध्यात्म पारखी जौहरियों की आँखों को चकाचौध बनाती है। इन्हीं वेदों में प्रथम स्थान प्राप्त ऋग्वेद जो की वैदिक विद्वानों के अनुसार अन्य सभी के समक्ष प्रस्तुत इकाई द्वारा किया जा रहा है। जिसमें ऋग्वेद के समय निर्धारिण में अनेक विद्वानों द्वारा किये गये मतों के विवरण के साथ–साथ ऋग्वेद पर विद्वानों द्वार लिखे गये आख्यानों का अध्ययन एवं तत्कालीन धर्म, समाज एंव संस्कृति पर विचार किया गया है।

कालक्रम से अत्यंत अतीत काल में निर्मित किसी ग्रंथ का आशय पिछली पीढ़ियों के लिये समझना एक अतीत इरूह व्यापार है। यदि प्रचीनता के साथ भावों की गहराई तथा भाषा की कठिनाई आ जाती है तो यह समस्याय और भी विषम वन जाती है। वेदों के अर्थानुशीलन, समयानुशलन के विषय में यह कथन अत्यंत उपयुक्त ठहरता है। एकतों यें स्वयं किसी धुधंले काल की अतीत ठहरे गंभीरता अपना सिक्का जमा रखा ह। यथा संभव इस समस्या का सुलझाने का प्रयास इकाई के द्वारा किया गया है।

2.2 उद्देश्य

:– इस इकाई के माध्यम से ऋग्वेद का काल निर्धारण सरलता से किया जा सकता है।
:– ऋग्वेद के प्रमुख आखयनों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
:– तत्कालीन धर्म समाज एवं संस्कृति के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
:– ऋग्वैदिक समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकेंगे।

2.3 ऋग्वेद का परिचय

ऋग्वैद धार्मिक स्तोत्रों की एक अत्यंत विशाल राशि है, जिसमें नाना देवाताओं की भिन्न–भिन्न ऋषियों ने बड़े ही सुंदर तथा भवाभिव्यंजक शब्दों में स्तुतियों एवं अपने अभीष्ट की सिद्धि के निर्मित पार्थनायें की है। पहिले बतलाया बतलाया गया है कि द्वितीय मंडल से लेकर सप्तम मंडल तक एक ही विशिष्ट कुल के ऋषियों की प्रार्थनायें संगृहीत हैं। अष्टम मंडल में अधिकतर मंत्र कणव ऋषि सं संबंध हैं, तथा नवम मंडल में (पवमान) सोम के विषय में भिन्न–भिन्न ऋषिकुलों के द्वारा दृष्ट अर्पण मंत्रों का संग्रह है। ऋग्वेदीय देवताओं में तीन देवता अपने वैशिष्टय के कारण नितान्त प्रसिद्ध है। अग्नि के लिए सबसे अधिक ऋचायं कही गई है। इन्द्र विजयप्रदाता होने के कारण सबसे अधिक ओजस्वी तथा वीर–रसमण्डित मंत्रों के द्वारा संयुक्त है। प्राणिमात्र की हार्दिक भावनाओं का जानने वाला और तदनुसार प्राणियों को दण्ड और पारितोषिक देने वाला वरूण कर्मफलदाता परमेश्वर के रूप में चित्रित किया गया है। इसलिए सर्वोच्च नैतिक भावनाओं से स्निग्ध तथा उदातता से मण्डित ऋचायें वरूण के विषय में उपलब्ध होती है। देवियों में उषा का स्थान अग्रगण्य है और सबसे आ गई कवित्वमण्डित प्रतिभाशली सौन्दर्यभिव्युक्त ऋचायें उषा देवी के विषय में मिलती है। इनके अतिरिक्त जिन देवताओं की संस्तृति में ऋचायें दृष्ट हुई उनमें प्रधान देवता हैं :– सविता, पूषा, मित्र, विष्णू, रूद्र, मरूत्, पर्जन्य आदि। ऋग्वैदीय ऋचाओं का प्रयोग यज्ञ के अवसर पर होता था और सोमरस की आहुति के समय प्रयुक्त मंत्रों का एकत्र संग्रह नवम मंडल में

किया गया मिलती है। इन देवों का विशेष वर्णन संस्कृति–खण्ड में किया गया है।

दशम मंडल की अर्वाचीनता

दशम मंडल अन्य मंडलों की अपेक्षा नूतन तथा अर्वीचान माना जाता है। इसका प्रधान कारण भाषा तथा विषय को लक्ष्य कर वंशमंडल (गोत्रमंडल) से इनकी विभिन्नता हैः–

भाषागत विभिन्नता–ऋग्वेद के प्राचीनतम भागों में शब्दों में 'रेफ' की ही स्थिति है। भाषाविदों की मान्यता है कि संस्कृत भाषा ज्यो–ज्यों विकसित होती गई त्यों–त्यों रेफ के स्थान लकार का प्रयोग बढ़ता गया है। जल–वाचक 'सलिल' का प्राचीन रूप 'सरिर' गोत्र मंडलों में प्रयुक्त है, परन्तु दशम मंडल के लकार युक्त शब्द का प्रयोग है। वैयाकरण रूपों के भी स्पष्ट पार्थक्य है। प्राचीन अंश में पुल्लिग अकारान्त शब्दों मं प्रथमा द्विवनज का प्रत्यय अधिकतर 'आ' है (यथा 'दा सुपुर्णा सयुजा सखाया' ऋग्वेद) परंतु दशम मंडल में उसके स्थान पर 'औ' का भी प्रचलन मिलता है– 'मा वामेती परेती रिषाम सूर्याचन्द्रमसौ घाता''। प्राचीन अंश में क्रियार्थक क्रिया की सूचना के लिए तबै, से असे, अर्ध्य आदि अनेक प्रत्यय प्रयुक्त होते है। परन्तु दशम मंडल में अधिकतर 'तुम' प्रत्यय काही प्रयोग मिलता है। 'कर्तवै' 'जीवसे' 'अवसे' आदि प्राचीन पदो ंके स्थान पर अधिकतर कर्तुम् जीवितुम् अवितुम् आदि प्रयोगों का प्राचार्य है। भाषागत विशिष्टता ब्राम्हण ग्रंथों की भाषा के सामने होने के कारण दशम मंडल इन ग्रंथों से कालक्रम में प्राचीन नहीं प्रतीत होता है।

छन्दोगत विशिष्टय– प्राचीन अंशो में उपलब्ध छंदों की अपेक्षा दशम मंडल के छंदों में पार्थक्य हैं । प्राचीन काल में वर्णो की संख्याय पर ही छन्दो विन्यास में विशेष आग्रह था, परन्तु अब लघुगुरू के उचित विन्यास पर भी सर्वत्र विशेष बल दिया जाने लगा था, जिससे पद्यो के पढ़ने में सुस्वरता तथा लय का आविर्भाव बड़ी रूचिरता के साथ होने लगा। फलतः अब 'अनुष्टुप' ने होकर लौलिक संस्कृत के अनुष्टुप ही के समान बन गया।

छेवगत वैशिष्टय– इस मंडल में उल्लिखित देवों में अनेक नवीन तथा अनिदिष्टपूर्व तथा प्राचीन देवों के रूप में स्वरूप– परिवर्तन दुष्टिगत होता है। वरूण समस्त जगत के नियन्ता, सर्वज्ञ, सर्वशिक्तमान् देव के रूप में पूर्व में निदिष्ट हैं, परन्तु अब उनका शासनक्षेत्र समिटि कर केवल जल ही रह जाता है। विश्वनियन्ता के पद से हट कर वे अब जलदेवता के रूप में ही दुष्टिगोचर होते है। मानसिक भवना तथा मानस वृतियों के प्रतिनिधि रूप से नवीन देव कल्पित किये गये है। ऐसे देवों में श्रद्धा मन्यु आदि का उल्लेख किया जा सकता है। तार्क्ष्य की भी स्तुति देवता के रूप में यहां उपलब्ध होती है। श्रद्धा कामायनी का बड़ा बोधक वर्णन एक सूक्त में मिलता है।

श्रद्धायाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।

श्रद्धा से अग्नि का समिन्धन होता है, अथार्त् ज्ञानाग्नि का प्रज्वलन श्रद्धा के द्वारा होता है। हवि का हवन श्रद्धा से होता है। ऐश्वर्य के ऊर्ध्व स्थान पर निवास करने के लिए हम लोग वचन के द्वारा श्रद्धा की स्तुति करते है। गाय की स्तुति में प्रयक्त एक समग्र सूक्त ही वैदिक आर्यो की गोविषयिणी भावना की बड़े ही सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त कर रहा है। एक पूरे सूक्त में आरण्यानी की स्तुति विषय की नवीनता के कारण पर्याप्त रूपेण आकर्षक है। सूक्त में हम 'ज्ञान' की एक महनीय देव के रूप में आर्यों में प्रतिष्ठित पाते

हैं। इसी सूक्त प्रख्यात मंत्र में चारों संहिताओं के द्वारा यज्ञ–कर्म का सम्पादन करने वाले होता, उद्‌गाता ब्रम्हा तथा अध्वर्यु नामक चार ऋत्विजों का हम स्पष्ट संकेत पाते है।

दार्शनिक तथ्यों का अविष्कार – इस मंडल में अनेक दार्शनिक सूक्तों की उपलब्धि होती है, जो अपनी विचारधारा से आर्यों के तात्विक चिन्तनों के विकास के सूचक हैं तथा उतरकालीन प्रतीत होते हैं। ऐसे सूक्तों के नासदासीय सूक्त तथा पुरूषसूक्त विशेष उल्लेखनीय हैं। पुरूषसुक्त में सर्वेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन है, जो प्रौढ़ विचारधारा का प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वान को दृष्टि में धार्मिक विकास का क्रम इस प्रकार बहुदेववाद–एकदेववाद सर्वेश्रवाद । प्राचीनतम काल में अनेक देवों की सता में आर्यो का विश्वास था, जो आगे चलकर एकदेव (प्रजापति या हिरण्यगर्भ) के रूप में परिणत होकर सर्वेश्वरवाद पर टिक गया। इस विकास की अंतिम दो कोटिया दशम मंडल में उपलब्ध होती है। फलतः उसका गोत्रमंडल से नूतन होना स्वाभाविक है।

विषय की नूतनता– इस मंडल में भौतिक विषय से संबंध तथा अध्यात्मिक विचारधारा से संवलित अनेक सूक्त उपलब्ध होते है।

भारतीय दृष्टि में श्रद्धा रखनेवाले विद्वान के सामने तो वेदों के काल निर्णय का प्रश्न ही नहीं उठता क्योकि जैसा हम पहले दिखला चुके हैं उनकी दृष्टि में वेद अनादि है, नित्य हैं, काल से अनवच्छिन्न हैं। वैदिक ऋषिराज मंत्रों के द्रष्टामात्र माने गये है, रचयिता नहीं, परंतु ऐतिहासिक पद्धति से वेदों की छानबीन करने वाले पश्चात्य वेदज्ञ तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों की सम्मति में वेदों के आविर्भाव का प्रश्न एक हल कराने योग्य वस्तु है। बहुतों इस विषया को सुलझाने में वृद्धि लगायी है, सूक्ष्म तार्किक बुद्धि तथा विपुल साधनों के पर्याप्त प्रमाणों को इक्ठ्ठा किया है। परन्तु उनके सिद्धांतों में शताब्दियों का ही नही बल्कि सहस्त्राब्दियों का अंतर है।

2.4 ऋग्वेद का समय

2.4.1 डा. मैक्समूलर के अनुसार

सबसे पहले प्रोफेसर मैक्समूलर ने 1859 ई. में अपने 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' नामक ग्रंथ में वेदों के कालनिर्णय का प्रथम श्लाघनीय प्रयास किया। उनकी मान्य सम्मति में वेदों में सर्वप्राचीन ऋग्वेद की रचना 1200 विक्रमपूर्व में संपन्न हुई। विक्रम में लगभग पांच सौ पहले बुद्ध ने इस धराधाम को अपने जन्म से पवित्र किया तथा मानवों के कल्याणर्थ एक नवीन धर्म की स्थापना की।

इसी बुद्धधर्म के उदय की आधारशिला पर वैदिककाल के आंरभ का निर्णय सर्वतो–भावेन अवलम्बित है। डॉ. मैक्समूलर ने समग्र वैदिकयुग को चार विभागों में बांटा है। छन्दकाल, मंत्रकाल, ब्राम्हणकाल, तथा सूत्र काल और प्रत्येक युग की विचारधारा के उदय तथा ग्रंथनिर्माण के लिए उन्होंने 200 वर्षो का काल माना जाता है। अतःबुद्ध से प्रथम होने के कारण सूत्रकाल का प्रारंभ 600 विक्रमपूर्व माना गया है। इस काल में श्रौतसूत्रों (कात्यायन, आपस्तम्ब आदि) तथा गृम्हसूत्रों की निर्मिति प्रधानरूपेण अगड़ीकृत की जाती है। इससे पूर्व का ब्राम्हण काल– जिसमें भिन्न–भिन्न ब्राम्हण–ग्रंथों की रचना, यानानुष्ठान का विपुलीकरण, उपनिषदों के आध्यात्मिक सिद्धांतों का विवेचन आदि संपन्न हुआ। इसके विकास के लिये 800 वि.पू.– 600 वि.पू तक दो सौ सालों का

कल उन्होंने माना है। इससे पूर्ववर्ती मंत्रयुग के लिए, जिसमें मंत्री का याग–विधान की दृष्टि से चार विभिन्न संहिताओं में संकलन किया गया, 1000 पूर्व से लेकर 800 वि.पू. का समय स्वीकृत किया गया है। इससे भी पूर्ववर्ती, कल्पना तथा रचना की दृष्टि से नितान्त श्लाघनीय युगछंद काल –था, जिसमें ऋषियों ने अपनी नव–नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर अर्थगौरव से भरे हुए मंत्रां की रचना की थी। मैक्समूलर की दृष्टि से यही मौलिकता का युग था, कमनीय कल्पनाओं का यही काल था जिसके लिए 1200–100 का काल विभाग उन्होंने माना है। ऋग्वेद का यही काल है। अतः बुद्ध के जन्म से पीछे हटते–हटते हम ऋग्वेद की रचना आज से लगभग 3200 वर्ष पूर्व की गई थी।

2.4.2 लोकमान्य तिलक का मत

लोकमान्य की विवेचना के अनुसार यह समय और भी पूर्ववर्ती होना चाहिए।

लोकमान्य ने वैदिककाल को चार युगों में विभक्त किया हैः–

(1) अदिति काल (6000–4000 वि.पू.) – इस सुदूर प्राचीनकाल में उपास्य देवताओं के नाम, गुण तथा मुख्य चरित के वर्णन करने वाले निविदों (याग संबंधी विधिवाक्यों) की रचना में गद्य और कुछ पद्य की गई तथा अनुष्ठान के अवसर पर उनका प्रयोग किया जाता था।

(2) मृगशिरा –काल (लगभग 4000–2500 वि0 पू0) –आर्यसभ्यता के इतिहास में नितान्त महत्त्वशाली युग यही था जब ऋगवेद के अधिकांश मन्त्रों का निर्माण किया गया । रचना की दृष्टि से यह विशेषत : क्रियाशील था ।

(3) कृत्तिका –काल (लगभग 2400–1400 वि0 पू0) इस काल में तैत्तिरीय –तथा शतपथ आदि अनेक प्राचीन ब्राह्मणों का निर्माण सम्पत्र हुआ । ' वेदांग ज्योतिष की रचना इस युग के अन्तिम भाग में की गई क्योंकि इसमें सूर्य और चन्द्रमा के श्रविष्ठा के आदि में उत्तर ओर धूम जाने का वर्णन मिलता है और यह धटना गणित के आधार पर 1400 वि0 पू0 के आसपास अंगीीकृत की गई है।

(4) अन्तिम –काल (1400–500 वि0 पू0) एक हजार वर्षा के अन्दर श्रोत्रसुत्र गृह्मसुत्र और दर्शन सूत्रो की रचना हुई तथा बुद्धधर्म का उदय वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में इसके अन्तिम भाग में हुआ ।

शिलालेख से पुष्टि–

नवीन अन्वेषणों से इस काल की पुष्टि भी हो रही है । सन् 1107 ई0 में डाक्टर हुगो विन्कलर ने एशिया माइनर (वर्तमान टर्की) के बोधाज –कोई नामक स्थान में खुदाई कर एक प्राचीन शिलालेख की । यह हमारे विषय के समर्थन में एक नितान्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण माना जाता है । पश्रिमी एशिया के खण्ड में कभी दो प्राचीन जातियों का निवास था –एक का नाम था 'हित्तिति' और दूसरे का 'मितानि'। ईटो पर खुदे लेख से पता चलता है कि इन दोनों जातियों के राजाओं ने अपने पारस्परिक कलह के निवारण के लिए आपस में सन्धि के सरंक्षक के रूप में दोनो जातियों की देवताओं की अध्यथना की गई । सरंक्षक देवो की सूची में अनेक बाबुलदेशीय तथा हित्तिति जाति के अतिरिक्त मितानि जाति के देवों में मित्र ;वरूण ; इन्द्र तथा नासत्यौ (अश्विन्) का नाम उपलब्ध होता हैं। मितानि नरेश का नाम 'मत्तिउजा' था और हित्तिति राजा की विलक्षण संज्ञा थी –'सुब्बि –लुलिउमा। दोनों में कभी धनधोर युद्ध हुआ था ; जिसके विराम के अवसर पर मितानि नरशे ने अपने शत्रु राजा की पुत्री के विवाह कर अपनी नवीन मैत्री के उपर

मानो मुहर लगा दी। इसी समय की पूर्वोक्त सन्धि है जिसमें चार वैदिक देवताओं के नाम मिलते है । ये लेख 1400 वि0 पू0 के है। अब प्रश्न है कि मितानि के देवताओं में वरूण; इन्द्र आदि देवो का नाम क्योंकर सम्मिलित किया गया ? उत्तर में यूरोपीय विद्वानों ने विलक्षण कल्पनाओं की लड़ी लगा दी है । इन प्रश्नों का न्याय्य उत्तर यही है मितानि जाति भारतीय वैदिक आर्यो की एक शाख थी जों भारत से पश्रिमी एशिया में जाकर बस गई थी या वैदिक धर्म को मानने वाली एक आर्य जाति थी। पश्चिमी एशिया तथा भारत का परस्पर सम्बन्ध उस प्राचीन काल में अवश्यमेव ऐतिहासिक प्रमाणों पर सिद्ध किया जा सकता है। वरुण मित्र आदि चारों देवताओं का जिस प्रकार क्रम से निर्देश किया गया है उससे इनके 'वैदिक देवता' होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। 'इन्द्र' को तो पाश्चात्य विद्वान् भी आर्यायर्त मं ही उद्भावित, आर्यो का प्रधान सहायक, देवता मानते है।

इस शिलालेख का समय 1400 विक्रमी पूर्व है। इसका अर्थ यह है कि इस समय से बहुत पहिले आर्यो ने आर्यावर्त में अपने वैदिक धर्म तथा वैदिक देवताओं की कल्पना पूर्ण कर रखी थी। आर्यो की कोई शाखा पश्चिमी एशिया में भारवतर्ष से आकर बस गई और यहीं पर उसने अपने देवता तथा धर्म का प्रचुर प्रचार किया। बहुत सम्भव है कि वैदिक देवताओं को मान्य तथा पूज्य मानने वाली यह मितानी जाति भी वैदिक आर्यों की ही किसी शाखा के अन्तर्भुक्त हो। इस प्रकार आजकल पाश्चात्य विद्वान् वेदों का प्राचीनतम काल विक्रमपूर्व 2000–2500 तक मानने लगे हैं, परन्तु वेदों में उल्लिखित ज्योतिष सम्बन्धी तथ्यों की युक्तियुक्तता तथा उनके आधार पर निर्णीत कालगणना में अब इन विद्वानों को भी विश्वास होने लगा है। अतः तिलकजी के ऊपर निर्दिष्ट सिद्वान्त को ही हम इस विषय में मान्य तथा प्रमाणिक मानते हैं।

2.4.3 भूगर्भसम्बन्धी वैदिक तथ्य के अनुसार –

ऋग्वेद में भूगर्भ–सम्बन्धी अनेक ऐसी घटनाओं का वर्णन है जिसके आधार पर ऋग्वेद के समय का निरूपण किया जा सकता हैं तत्कालीन युग में सिन्धु नदी के किनारे आर्यो के यज्ञविधान विशेषरूप से होते थे। इस नदी के विषय में ऋग्वेद का कथन है कि नदियों में पवित्र सरस्वती नदी ऊँचे गिरिश्रृ" से निकल कर समुद्र में गिरती है–

एका चेतन् सरस्वती नदीनाम्,
शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। (ऋग्वेद 7/95/2)

एक दूसरे मन्त्र में (3/33/2) सरस्वती और शुतुद्रि नदियों के गरजते हुए समुद्र में गिरने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि आजकल जहाँ राजपूताना की मरुभूमि है वहाँ प्राचीनकाल में एक विशाल समुद्र था और इसी समुद्र में सरस्वती तथा शुतुद्रि नदियाँ हिमालय से बहकर गिरती थीं। जान पड़ता है कि राजपूताना समुद्र के गर्भ में कोई भयंकर भूकम्प सम्बन्धी विप्लव हुआ, फलस्वरूप एक विस्तृत भूखण्ड ऊपर निकल आया और जो सरस्ती नदी वस्तुतः समुद्र (राजपूताना सागर) में ही गिरती थी वह अब मरुभूमि के सैकत राशि में विलीन हो गई। ताण्ड्य–ब्राह्मण (25/10/6) से स्पष्ञ है कि सरस्वती 'विनशन' में लुप्त होकर 'प्लक्ष–प्रस्रवण' में पुनः आविर्भूत होती थी। इसका तात्पर्य यह है कि सरस्वती समुद्र तक पहुँचने के लिए पूरा प्रयत्न करती थी, परन्तु राजपूतना के बढ़ते हुए मरुस्थल में उसे अपनी जीवनलीला समाप्त करनी पड़ी।

ऋग्वेद के अनुशीलन से आर्यों के निवास–स्थान सप्तसिन्धु प्रदेश के चारों ओर

चार समुद्रों के अस्तित्व का पता चलता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (10/136/5) में सप्तसिन्धु के पूर्व तथा पष्चिम में दो समुद्रों के वर्तमान होने का उल्लेख है। जिनमें समुद्र तो आज भी वर्तमान है, परन्तु पूर्वी समुद्र का पता नहीं है। ऋग्वेद के दो मन्त्रों में चुतःसमुद्रों का निःसन्दिग्ध निर्देश है। प्रथम मन्त्र में–

रायः समुद्राS ातुरोऽसमभ्यं सोम विS ातः।
आ पवस्व सहस्रिणः।। (ऋ० 9/33/6)

सोम से प्रार्थना है कि धनसम्बन्धी चारों समुद्रों (अर्थात् चारों समुद्रों से युक्त भूखण्ड के आधिपत्य) को चारों दिशाओं से हमारे पास लावे तथा साथ ही असीम अभिलाषाओं को भी लावें। दूसरे मन्त्र (10/47/2) 'स्वायुधं स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चुतःसमुद्रं धरुण रयीणाम्'' में भी स्पष्ट ही 'चतुःसमुद्रं' का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेदीय युग में आर्यप्रदेश के चारों ओर समुद्र लहरा रहे थे। इनमें पूर्वी समुद्र आज के उत्तर प्रदेश तथा बिहार में था, दक्षिण समुद्र राजपूताना की मरुभूमि में था, पश्मिी समुद्र आज भी वर्तमान है, उत्तरी समुद्र की स्थिति उत्तर दिशा में थी, क्योंकि भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार एशिया के उत्तर में बल्ख और फारस से उत्तर में वर्तमान विशाल सागर की सत्ता थी, जिसे वे 'एशियाई भूमध्य सागर' के नाम से पुकारते है। यह उत्तर में आर्कटिक महासागर से सम्बद्ध था और आजकल के 'कृष्ण सागर' (काश्यप सागर), अराल सागर तथा वाल्कश ह्रद इसी के अवशिष्ट रूप माने जाते हैं।

उन दिनों समस्त गंगा–प्रदेश, हिमालय की पाद–भूमि तथा असम का विस्तृत पर्वतीय प्रदेश समुद्र के गर्भ में थे। कालान्तर में गंगा नदी हिमालय की गगनचुम्बी पर्वतश्रेणी से निकलकर सामान्य नदी के रूप में बहती हुई हरद्वार के समीप ही 'पूर्व समुद्र' में गिरने लगी। यही कारण है कि ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदीसूक्त (10/75) में गंगा का बहुत ही संक्षिप्त परिचय मिलता है। उस समय पंजाब के दक्षिण तथा पूर्व में समुद्र था, जिसके कारण दक्षिण भारत एक पृथक्–खण्ड–सा दीखता था। पंजाब में उन दिनों शीत का प्राबल्य था। इसलिये ऋग्वेद में वर्ष का नाम 'हिम' मिलता है। भूतत्त्वज्ञों ने सिद्ध किया है। कि भूमि और जल के ये विभिन्न भाग तथा पंजाब में शीतकाल का प्राबल्य प्लोस्टोसिन काल अथवा पूर्वप्लीस्टोसिन काल की बात है। यह काल ईसा से पचास हजार वर्ष से लेकर पचीस हजार वर्ष तक निर्धारित किया गया है। भूतत्त्वज्ञों ने यह भी स्वीकार किया है कि इस काल के अनन्तर राजपूताने के समुद्र मार्ग के ऊपर निकल आने के साथ ही हिमालय की नदियों के द्वारा आहृत मृत्तिका से गंगा प्रदेश की समतल भूमि बन गई और पंजाब के जलवायु मे उष्णता आ गई। पंजाब के आसपास से राजपूताना समद्र तथा हिमसंहिताओं (ग्लेशियर) के तिरोहित होने तथा वृष्टि के अभाव के कारणय ही सरस्वती का पुण्य–प्रवाह सूक्ष्म रूप धारण करता हुआ राजपूताने की बालुका–राशि में विलीन हो गया।

ऊपर निर्दिष्ट भौगोलिक तथा भूगर्भ–संबंधी घटनाओं के आधार पर ऋग्वेद की रचना तथा तत्कालीन सभ्यता के अविर्भाव का समय कम से कम ईसा से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व माना जाना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में ऋग्वेद के ऊपर दिये गये उल्लेख वैज्ञानिक न होकर भावुक ऋषियों की कल्पना–मात्र से प्रसूत हैं। उन्हें आधार मान कर वैज्ञानिक अनुसंधान की बात उन्हें उचित नही प्रतीत होती।

पण्डित दीनानाथ शास्त्री चुटेल ने अपने 'वेदकालनिर्णय' नामक ज्योति स्तत्तमीमांसक ग्रंथ के आधार पर वेदों का काल बहुत ही प्राचीन (आज से तीन लाख वर्ष पूर्व) सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। आजकल के वेदकाल के पाश्चात्य मीमांसक विद्वान

इतने सुदूर प्राचीनकाल का स्वप्न भी नहीं देख सकते। उनका कथन है कि वेदों में निर्दिष्ट ज्योतिषशास्त्र–विषयक निर्देश केवल कल्पना–प्रसूत हैं, उनका कथन गणना के आधार पर उनका निर्धारण नहीं किया गया है। इस प्रकार वेदों के काल–निर्धारण में विद्वानों के मन्तव्यों में जमीन–आसमान का अंतर है।

ऋग्वेद के निर्माण–काल के विषय में ये ही प्रधान मत है। इतना तो अब निश्चित–प्राय है कि वेदों का समय अब उतना अर्वाचीन नहीं है जितना पहिले माना जाता था। पश्चिमी विद्वान लोग भी अब उनका समय आज से पांच हजार वर्ष पूर्व मानने लगे है। वेदों के काल के विषय में इतने विभिन्न मत है कि उनका समन्वय कथमपि नही किया जा सकता। वेद में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्रीय तथ्यों को कोई काल्पनिक मानते हैं, तो कोई गणना के आधार पर निर्दिष्ट वैज्ञानिक तथा सत्य मानते है। इसी दृष्टि–भेद के कारण समय के निरूपण में इतनी विमति और विभिन्नता है। काल–निर्णय के मान्य सिद्धांतों का ही यहां संक्षित विवरण ऊपर दिया गया है।

ऋग्वैदिक आख्यान –

संहिताओं के अध्ययन से इतिहास तथा आख्यान कसता का प्रमाण हमे वैदिक युग में उपलब्ध होता है। प्राचीन ग्रंथों में इतिहास पुराण के एक साथ और पृथक–पृथक उल्लेख पाये जाते है। अथर्ववेद में इतिहास–पुराण का निर्देश मौखिक साहित्य के रूप में होकर लिखित ग्रंथों के रूप में किया गया मिलता है। छाग्दोग्य–उपनिषद में इतिहास–पुराण अध्ययन–अध्यापन का मुख्य विषय बतलाया गया है। कौटिल्य (तृतीय शती वि.पू.) ने इतिहास के अंतर्गत इन विषयों की गणना की है–पुराण (प्राचीन आख्यान), इतिवृत (इतिहास), आख्यायिका (कहानियाँ), उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, जिनका श्रवण अपराह्न में राजा को अपने ज्ञानवर्धन के लिए अवश्यमेव करना चाहिए। इतिहास कीयह परिवृंहित कल्पना अवान्तर काल से संबंध रखती है, प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के साहित्य की स्थिति अवश्मेव विद्यमान थी।

ऋग्वेद की व्याख्या–प्रणाली का अन्यतम प्रकार 'ऐतिहासिको' का भी था, जिसका उल्लेख यास्क ने निरूक्त में अनेकशः किया है। 'वृत' की व्याख्या में एतिहासिका का कहना था कि यह त्वााष्ट्र असुर की संज्ञा है। इस प्रकार इन व्याख्याकारों की सम्मति में वेदों में अनेक महत्वपूर्ण आख्यान विद्यमान है। ऋग्वेद में आख्यानों की संख्या कम नहीं है। इनमें से कुछ आख्यान तो वैयक्तिक देवता के के विषय में है। और कुछ आख्यान किसी सामूहिक घटना को लक्ष्य कर प्रवृत होते हैं। तथ्य यह है कि आख्यानों के मूल रूप की अभिव्यक्ति ऋग्वेद के मंत्रों में मिलती है। अनन्तर युगों में ही आख्यान परिस्थिति के परिवर्तन से अथवा नवीन युग की नवीन कल्पना के प्रभाव से परिवर्तित और परिबृहित होकर विकसित दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद के अनेक आख्यान ब्राम्हणों मे उपनिषदों में सूत्र–ग्रंथों में, रामायण महाभारत में तथा विभिन्न पुराणों में अपनी घटनाओं की स्थिति के विषयय में विशेष रूप से विकसित और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से अंकित दृष्टिगोचर होता है। मूल के सरल आख्यान पिछले ग्रंथों में अनेक विस्तृत घटनाओं से मंडित होने से विषम तथा मिश्रित रूप से में हमेक उपलब्ध होते हैं, ऋग्वेद में इन्द्र तथा अश्विन् के विषय में भी अनेक आख्यान मिलते है, जिनमें इन देवों की वीरता, पराक्रम तथा उपकार की भावना को स्पष्ट अंकित किया गया है। ऋग्वेद के भीतर 30 आख्यानों का स्पष्ट निर्देश किया गया है, जिनमें से कतिपय प्रख्यात की महत्वपूर्ण सूची यह है शुनःशेष अगस्त्य और लोपामुद्रा, गुत्समद, वसिष्ठ और विश्वामित्र, सोम का अवतरण, अरूण और वृश जान, अग्नि का जन्म, श्यावाश्य, बृहस्पति का जन्म, राजा सुदास, नहुष, अपाला, नाभानेदिष्ट, वृषाकपि, उर्वशी और पुरूवा सरमा और पणि

देवापि और शन्तनु नचिकेता इनके अतिरिक्त दान–स्तुतियों में अनेक राजाओं के नाम उपलब्ध हैं, जिनसे दार पाकर वैदिक ऋषियों को उनकी स्तुति में मंत्र लिखने की भव्य प्रेरणा मिली।

प्रख्यात आख्यान

शुनःशेप का आख्यान ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में बहुशः संकेतित होने में सत्य घटना के ऊपर आश्रित प्रतीत होता है। ऐतरेय–ब्राम्हण में यह आख्यान बड़े विस्तार के साथ वर्णित है, जिसके आदि में राजा हरिश्चंद्र का और अंत में विश्वामित्र का संबंध जोड़कर इसे परिवर्तित किया गया है। वरूण की कृपा से ऐक्ष्वाक नरेश हरिश्चंद्र को पुत्र उत्पन्न होना, समर्पण के समय उनका जंगल में भाग जाना, हरिश्चंद्र को उदररोग की प्राप्ति, रास्ते में अजीगर्त के मध्यम पुत्र शुनःशेप का क्रय करना, देवाताओं की कृपा से उसका वध्य पशु होने से बच जाना, विश्वामित्र के द्वारा ाउसकों कृतक–पुत्र बनाना आदि आख्यान की घटनायें इस नितान्त प्रख्यात हैं।

उर्वशी और पुरूरवा का आख्यान–

वेदयुग की एक रोमाचक प्रणयगाथा है। देवी होने पर भी उर्वशी ने राजा पुरूरवा के साथ प्रणय पाश में बद्ध होकर पृथ्वी तल पर रहना अंगीकार किया था परन्तु इसके लिए राजा को तीन शर्ते माननी पड़ी थी– वह सदा घृत का आहार किया करेगी; उसके प्यारे दोनो मेष सदा उसकी चारपाई के पास बंधे रहेंगे, जिससे कोई उन्हें चुरा न सके ; तीसरी बात सबसे विकट यह थी कि यदि वह किसी भी अवस्था में राजा को नग्न देख लेगी तो एक क्षण में वहों से गायब हो जायेगी। पुरूरवा ने इन्हें स्वीकार कर लिया और दिव्य प्रेयसी के संग में आनन्द–विभोर होकर अपना जीवन बिताने लगा, परन्तु गन्धर्वों को उर्वशी की अनुपस्थिति में र्स्वग नीरस तथा निर्जीव प्रतीत होने लगा; फलतः उन्होंने उन शर्तों को तोड़ डालने के लिए एक छल की रचना की। रात के समय उन्होंने उर्वशी के पास एक मेष को चुरा लिया। मेष की करूणाजनक बोली सुनते ही उर्वशी ने चोर को पकड़ने के लिए राजा को ललकारा, जो तुरंत की आकाश में मेष की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। उसी समय गन्धर्वों ने बिजली को आकाश में चमका दिया। राजा का नग्न शरीर उर्वशी के सामने स्पष्टतः प्रकट हो गया। वह राजा को छोड़कर बाहर निकल पड़ी। राजा उसके विरह में विषण्ण होकर पागल की तरह भूमण्डल में घूमने लगा। अन्ततोगत्वा कुरूक्षेत्र के एक जलाशय में उसने हंसिनियों को पानी में तैरते हुए देखा और उनमें हंसी का रूप धारणय करने वाली अपनी प्रेयसी को पहचाना। उसे लौट आने की विनम्र प्रार्थना की, परन्तु उर्वशी किसी प्रकार भी राजा के पास लौट आने के लिए तैयार नहीं हुई। राजा की दयनीय दशा देखकर गन्धर्वों के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हुई। और उन्होंने अग्निविद्या का उपदेश दियाय जिसके अनुष्ठान से उसे उर्वशी का अविच्रिछन्न समागम प्राप्त हुआ।

ऋग्वेद के प्रख्यात सूक्त में दोनों व्यक्तियों का कथनोपकथन मात्र है, परन्तु शतपथ ब्राम्हणय ने इस कथानक को रोचक विस्तार के साथ निबद्ध किया है, तथा इस प्रणय कथा के अंकन में साहित्यिक सौन्दर्य का भी परिचय दिया है। विष्णुपुराण, मत्यपुराण तथा भागवत में इसी कथा का रोचक विवरण हम पाते है। कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय' त्रोटक में इस कथानक को नितान्त मंजुल नाटकीय रूप प्रदान किया। इस आख्यान के विकास मेंएक विशेष तथ्य की सत्ता मिलती है। पुराणों ने तथा कालिदास में मत्स्यपुराण का आधार लेकर इसे प्रणयगाथा के रूप में ही अंकित किया, परन्तु वैदिक आख्यान में पुरूरवा पागल प्रेमी न होकर यज्ञ का प्रचारक नरपति है। वह पहिला व्यक्ति है जिसने धौत अग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि नाम त्रेता अग्नि) की स्थापना का रहस्य

जानकर यज्ञ–संस्था का प्रथम विस्तार किया। पुरूरवा के इस परोपकारी रूप की अभिव्यक्ति वैदिक आख्यान का वैशिष्टय है।

च्यवान भार्गव तथा सुर्कया मानवी का आख्यान

च्यवान भार्गव तथा सुकन्या मानवी का आख्यान भारतीय नारीचरित्र का एक नितान्त उज्ज्वल दृष्टान्त उपस्थित करता है। यह कथा ऋग्वेद के अश्विन से संबंध अनेक सूक्तों में संकेतित है। यही कथा ताण्डयब्राम्हण में निरूक्त में, शतपथ (काण्ड 4) में तथा भागवत (स्कन्ध 9, अध्याय 3) में भी विस्तार से दी गई है। च्यवन का वैदिक नाम 'च्यवान' है। सुकन्याय की वैदिक कहानी उसकी पौराणिक कहानी की अपेक्षा कहीं अधिक उदात और आर्दशमयी है। पुराण में सुकन्या ऋषि की चमकती हुई आंखों को छेदकर स्वयं अपराध करती है और इसके लिए उसे दण्ड मिलना स्वाभाविक ही है, परन्तु वेद में उसका त्याग उच्चकोटि का है ; सैनिक बालकों के द्वारा किये गये इस अपराध के निवारण के सुकन्यसाय वृद्ध च्यवान ऋषि को आत्मसर्पण करती है।उसके दिव्य प्रेम से प्रभावित होकर अष्विनों ने चयवान को वार्धक्य से मुक्त कर दिया और उन्हें नूतन यौवन प्रदान किया।

तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है अनेक आख्यान कालान्तर में परिवर्तित या विभिन्न सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के कारण अपने विशुद्ध रूप से नितान्त विकृत रूप धारण कर लेते है। विकास की प्रक्रिया में अनेक अवान्तर घटनायें भी उस आख्यान के साथ संश्लिष्ट होकर उसे एक नया रूप प्रदान करती है, जो मूल आख्यान से नितान्त सिद्ध; होता है। शुनःशेप तथा वसिष्ठ–विश्वामित्र के कथानकों का अनुशीलन इस विचित्र सिद्धांत के प्रदर्शन में दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। 'शुन'शेप' का आख्यान ऋग्वेदा के प्रथम मंडल (सूक्त 24, 25) में स्पष्टतः संकेतित है, जिसका विस्तार ऐतरेय (सप्तम पंचिका) में उपलब्ध होता है। यहां शुनःशेप का आख्यान आरंभ में राजा हरिश्चंद्र के पुत्र रोहिताश्व के साथ तथा कथान्त में ऋषि विश्वामित्र के साथ संबंध होकर एक भव्य नवीन रूप धारण कर लेताय है। उसे अन्य दो भाइयों, उसे पिता के दारिद्रय, उसके बेचने आदि की समस्त घटनाएं कथानक में रोचकता लाने के लिए पीछे से गढ़ी गई प्रतीत होती है। 'शुनःशेप' का अर्थ भी कुते से कोई संबंध नहीं रखता, शुनः' का अर्थ है सुख, कल्याण तथा 'शेप' का अर्थ है स्तम्भ, खम्भा। अतः 'शुनशेप का आर्थ ही है :सौख्य का स्तम्भ' और इस प्रकार यह कथानक वरूण के पाश में मुक्ति का संदेश देता हुआ कल्याण के मार्ग को प्रशस्त बनाता है।

वसिष्ठ विश्वामित्र का आख्यान ऋग्वेद में स्वतः संकेतित है। ये दोनों ऋषि संभवत भिन्न–भिन्न समय में राजा सुदास के पुरोहित थे। ये उस युग के ऋषि हैं जो चातुर्वण्य के क्षेत्र में बाहर माना जा सकता है। दोनों में परम सौहार्द तथा मैत्री की भावना का साम्राज्य विराजता हैं। दोनों में परम सौहार्द तथा मैत्री की भावना का साम्राज्य विराजता है। दोनों तपस्या से पूत, तेज के पृख तथ अलौलिक शक्तिशाली महापुरूष हैं, परन्तु अवान्तर ग्रंथों में–रामायण, पुराण, बहद्देवता आदि में– दोनों के बीच एक महान संघर्ष, वैमन्सय तथा विरोधी की कल्पना का उदय मिलता है। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राम्हणत्व पाने के लिए लालायित, वसिष्ठ के द्वारा अनड़ीकृत होने पर उनके पुत्रों के विनाशक के रूप में चित्रित किये गये है। इसी कल्पना के आधार पर आलोचकों ने ब्राम्हणों और क्षत्रियों के बीच घोर विद्रोह की एक अमंगलमय दुर्ग खड़ा कर दिया है, जो वास्तव में निराधार, उपेक्षणीय तथा नितान्त भ्रान्त है। वैदिक आख्यान के स्वरूप में अपरिचित व्यक्ति ही इन पावनचरित्र ऋषियों के अअवान्तरकालीन वर्णनों से इस भ्रान्त निर्णय पर पहुंचता है कि प्राचीन भारत में ब्राम्हणों और क्षत्रियों के बीच महान विरोध तथा संघर्ष था। यह वास्तव में निराधार कल्पना है। वैदिक आख्यानों का विकास अवान्तर युग में किस प्रकार संपन्न हुआ

हय अध्ययन का एक गंभीर विषय है। कतिपय आख्यानों के विकास का इतिहास बड़े रोचक ढंग से कई विद्वानों ने निर्णय किया है।

वैदिक आख्यान का तात्पर्य

आख्यानों का तात्पर्य क्या है ? इस प्रश्न के उतर में विद्वानों की प्रर्याप्त विमति है। अमेरिकन विद्वान डात्र ब्लूमफील्ड ने इस विषय की चर्चा करते हुए उन विद्वानों के मत खण्डन किया है। जिन्होंने आख्यानों की रहस्यी व्याख्या प्रस्तुत की है। उदाहरणर्थ ये रहस्यवादी वैदिक पुरूवा के आख्यान के भीतर एक गंभीर रहस्य का दर्शन करते हैं। उनकी दृष्टि में पुरूवा सूर्य और उर्वशी भाषा है। उषा और सूर्य का परस्पर संयोग क्षणिक ही होता है। उनके वियोग का काल बड़ ही दीर्घ होता है। वियुक्त सूर्य उषा की खोज में दिन भर उसके पीछे घूमता करता है। तब कही जाकर फिर दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों को समागम होता है। प्राचीन भारत के वैदिक विद्वानों की व्याख्या का यही रूप था। अतः इन आख्यानों की उनके मानवीय मूल्य से वंचित रखना कथमपि न्याय और उपयुक्त नहीं प्रतीत होता।

इन आख्यानों के अनुशीलन के विषय में दो तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है :– (क) ऋग्वेदीय आख्यान ऐसे विचारों को अग्रसर करते हैं और ऐसे व्यापारों का वर्णन करते है। जो मानव सनाज के कल्याण साधन के नितान्त समीप है। इनका अध्ययन मानव–मूल्यों के दृष्टिकोणय से ही करना चाहिए। ऋग्वेदीय ऋषि मानव की कल्याणसिद्धि के लिए उपादेय तत्वों का समावेश इन आख्यानों के भीतर करता है। (ख) उसी युग के वातावरणय को ध्यान में रखकर इनका मूल्य और ताप्पर्य निर्धारण करना चाहिये। जिस युग में में इस आख्यानों का आविर्भाव हुआ था। अर्वाचीन तथा नवीन दुष्टिकोण से इनका मूल्य–निर्धारण करना इतिहास के प्रति ओर अन्याय होगा। इन तथ्यों की आधारशीला पर ही आख्यानों की व्याख्या समुचित और वैज्ञानिक होगी।

आाख्यानों की शिक्षा मानवसमाज के सामूहिक कल्याण तथा विश्वमंगल की अभिवृत्रिद्ध के निमित है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव और देव दोनों परस्पर संबंध है। मनुष्यय यज्ञों में देवों के लिए आहुति देता है, जो प्रसन्न होकर अभिलाषा पूर्ण करते है और अपने प्रसादों की वृष्टि उसके ऊपर निरन्तर करते है। इंद्र तथा अश्विन विषयक आख्यान इसके विशद् दृष्टान्त है। यजमान के द्वारा दिये गये सोमरस का पान इंद्र नितान्त प्रसन्न होते है और उसकी कामना का सफल बनाते हैं। अवर्षण के दैत्य (वृत्र) को अपने वज्र से छिन्न–भिन्न करके सब नदियों का प्रवाहित करते हैं। वृष्टि से मानव आप्यायित होते हैं, संसार में शांति विराजने लगती है। कालिदास इस वैदिक तथ्य को थोड़े शब्दों में रघुवंश में बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है।

प्रत्येक आख्यान के अंतकाल में मानवों के शिक्षणार्थ तथ्य अन्तर्निहित हैं। अपाला आत्रेयी का आख्यान नारीचरित्र की उदात्तता तथा तेजस्विता का विशद प्रतिपादक है। राजा अरूण अैवृष्ण वृषजान का आख्यान ताण्डयब्रा, ऋग्विधान, बृहदेवता, वैदिककालीन पुरोहित की महता और गरिमा का सष्ष्ट संकेत करता है। सोभरि काण्व का आख्यान संगति के महत्व का प्रतिपादन करता है। उषस्ति चाक्रायण (छान्दोग्य, प्रथम प्रपाठक, खण्ड 10–11) का आख्यान अन्न के सामूहिक प्रभाव तथा गौरव की कमनीय कथा है। शुनःशेप के आख्यान में देवता की अनुकम्पा का उज्ज्वल संकेत है। देवों की कृपा से शुनःशेप अपने प्राणों की रक्षा करने में समर्थ होता है। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र के आख्यान को भलीभांति विश्लेषण न करने से इन ऋषियों के विषम में अनेक और निराधार कल्पना का जन्म होता है। वषिष्ठ तपस्या की मूर्ति है ताथा विश्वामित्र पुरूषकार की। दोनों परस्पर में गाढ़ मित्र हैं तथा वैदिक नृपति के समानरूप से यागों का सम्पादन करते है। उनका

वैरभाव और संघर्ष क्षगिक है, परतु पिछले युग में संघर्ष को बढ़ाकर दिखाने का प्रयास है। श्यावाश्व आत्रेय की कथा ऋषि के गौरव को, प्रेम की महिमा को तथा कवि की साधना को बड़ी सुन्दर रीति से अभिव्यक्त करती है। ऋग्वेदीय युग की यह प्रख्यात प्रणय कहानी है, जिसमें प्रेम की सिद्धि के लिए श्यावाश्व तपस्या के बल पर मंत्रद्रष्टा बन जाते हैं। दघ्यङ् आथर्णव का आख्यान शतपथ बृहदारण्यक भागवतपुराण राष्ट्र के मंगल के जीवनदान की शिक्षा देकर हमे क्षुद्र स्वार्थ से ऊर उठने का राष्ट्र के कल्याण करने का गौरवमय उपदेश देता है। पुराण में इन्ही का नाम ऋषि दधीच है, जिन्होंने वृत्र को मारने के लिए इन्द्र को अपनी हडिड्यों वज्र बनाने के लिए देकर आर्यसभ्यताय की रक्षा की। अनधिकारी की रहस्य–विद्या के उपदेश का विषम परिणाम इस वैदिक आख्यान में दिखलाया गया है। इन सब आख्यानों का यहीय महनीय उपदेश है– ईश्वर में अटूट श्रद्धा तथा मानव से घनिष्ठ प्रेम। विश्व के कल्याण का यही मंगलमय मार्ग है।

कतिपय ऋषियों की चारिख्कि त्रुटियों का तथा अनैतिक आचरण का भी वर्णन वैदिक तथा तदनुसारी महाभारतीय और पौराणिक आख्यानों में उपलब्ध होता है इनसे हमें उपदेश ग्रहणय करना चाहिए। ये कथानक अनैतिकता के गर्त से बचाने के लिए ही निर्दिष्ट है। तपस्या से पवित्र जीवन में भी जब प्रलोभन के अवसर उपस्थित होने पर चारित्रिक पतन की संभावना हो सकती है, तक साधारणय मानवों की कथा ही क्या ? कामिनी काचन का प्रलोभन उनके कच्वें हृदय को खीचनें कें कैसे नहीं समर्थ होगा ? फलतः इनसे हमे सदा जागरूक रहना चाहिए। इस विषय में महाभारत का यह कथन ध्यान देने योग्य है–

कृतानि यानि कर्माणि दैवतैर्मुनिभिस्तथा।
न चरेत तानि धर्मात्मा श्रृत्वा चापि न कुत्सयेत।।
अलमन्यैरूपालब्धैः कीर्तितैश्य व्यतिवमेः।
पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः।।

धर्मात्मा व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिए कि वह मुनियों के द्वारा किये गये लोकविरूद्ध कर्मों को न करे और सुनकर भी उनकी निन्दा न करे। दूसरों को उलाहना देने से लाभ क्या ? उनके चरित में देखे गयेय अतिक्रमों के कीर्तन से फल ही क्या होगा ? जो हित हमारे लिए शोभन तथा अनुरूप हो उसे ही करना चाहिए। महाभारत के इन सारगर्भित वचनों को सदा ध्यान में रखकर अपना हित–चिन्तन करना चाहिए, दूसरों की निन्दा से लाभ ही क्या ? वैदिक आख्यानों की ओर यही हमारा दृष्टिकोणय होना चाहिये।

वैदिक ऋषि भरद्वाज का आख्यान

वैदिक ऋषियों की उदात्त मंडली में भारद्वाज का नामय अतिशय महत्व रखता है। कारण यह है कि ऋग्वेद का षष्ठ मंडल महर्षि भारद्वाज तथा उनके वंशजन्मा ऋषियों के द्वारा दृष्ट तथा अनुभूत मंत्रों का श्लाघनीय संग्रह है। इस मंडल में 75 सूत्र है जिनकी ऋचाओं की संख्या 765 है। इनमें से कुछ ऋचाएं तो स्वयं भारद्वाज द्वारा दृष्ट है तो अन्य भरद्वाजवंशीय ऋषियों जैसे गर्ग, पायु, ऋषिश्वा आदि के द्वारा। बृहद देवता तथा सर्वानुक्रमणीय में भारद्वाज को अंगिरस का पौत्र तथा बृहस्पति देवता का पुत्र बतलाया गयाहै। अतएव इनका समग्र अभिघात आंगरिस बार्हस्पत्य भारद्वाज है। ऋग्वेद इन्हें आंगरिस' होने का बहुश उल्लेख करता है।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवान जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अंगरिसां यद्ध विप्रो मधु छंदों भनति रेभ इष्टौ।।

यह मंत्र उन्हें आंगरिस् ऋषियों की मंडली में मेधावी स्तुतियों का प्रेरक, स्तवन करने वाला तथा मधुमत छंदों का वक्ता बतलायाय है। ये उचथ्थपत्नी ममता के गर्भ से बृहस्पति के

वीर्य से प्रसूत बतलाये जाते है। सुनते है कि जन्म के समय में ही ये माता–पिता द्वारा परित्यक्त किये गये थे। तब इनका मरूत् नामक देवों के द्वारा संपन्न किया गया था। 'भारद्वाज' नामकरणय का तात्पर्य इसी घटना से लगाया जाता है। उत्पन्न पुत्र के पोषणय तथा संरक्षण के विषय को लेकर बृहस्पति तथा ममता में विवाद उठ खड़ा हुआ। प्रत्येक अपने ऊपर रक्षण का भार न लेकर उसे दूसरे के ऊपर टालने का प्रयास करता है। इसीलिए इनका नाम 'भारद्वाज' पड़ा–

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम्।।

श्लोक का तात्पर्य– 'द्वाज' का अर्थ दो से उत्पन्न संतान। बालक माता–पिता से उत्पन्न होने से 'द्वाज' कहलाया। दोनो परस्पर एक दूसरे का रक्षाभार देकर चले गये इसी हेतु वह 'भारद्वाज' कहलाया।

2.4.4 प्राचीन वर्षारम्भ के अनुसार –

पाठक हम जानते है कि एक वर्ष के अंतर 6 ऋतुय होती है– वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त तथा शिशिर, इन ऋतुओं का आविर्भाव सूर्य के संक्रमण पर निर्भर रहता है। यह बात सुविख्यात है कि प्राचीन काल से लकर आजतक ऋतुयें पीछे हटती चली जा रही हैं अर्थात् प्राचीनकाल में जिस नक्षत्र के साथ जिस ऋतु का उदय होता था, आज वहीं ऋतु उस नक्षत्र से पूर्ववर्ती नक्षत्र के समय आकर, उपस्थित होती है। प्राचीनकाल में बसन्त से वर्ष का प्रारंभ माना जाता है। 'ऋतुनां कुसुमाकर' गीता। आजकल 'वसन्त से सम्पात' (वर्नल इक्विनाक्स) मीन की संक्रान्ति से आरंभ होता है और यह संक्रान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण से आरंभ होती है, परन्तु यह स्थिति धीरे–धीरे नक्षत्रों के एक के बाद एक के पीछे हटने से हुई है। किसी समय वसन्त–सम्पात उतरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आदि नक्षत्रों में था, जहां से वह क्रमशः पीछे हटता हुआ आज वर्तमान स्थिति पर पहुंच पाया है। नक्षत्रों के पीछे हटने से ऋतुपरिवर्तन तब लक्ष्य में भलीभांति आने लगता है। ज बवह एक मास पीदे हट जाता है। सूर्य के संक्रमण वृत 360 अंशों का है। अतः प्रत्येक नक्षत्र (360÷27)=13½ अंशों का एक चाप बनाता है। संक्रमण बिन्दु को एक अंश पीछे हटने में 42 वर्ष लगते है अतः पूरे एक नक्षत्र पीछे हटने के वास्ते उसे (72×13½) = 972 वर्षो का महान काल लगता है। आजकल वसन्त सम्पात पूर्वाभाद्रपद के चतुर्थ चरण में पड़ता है, अर्थात् ज बवह कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था, तब से लेकर आज तक वह लगभग साढ़े चार नक्षत्र पीछे हट आया है। अतः त्यातिषगण के आधार पर कृतिका नक्षत्र में वसन्त–सम्पात का काल आज से लगभग (972×4½=4374) साढ़े चार हजार वर्ष पहले था, अर्थात् 2500 वि. पू. के समय यह ज्योषि की घटना मोटे तौर पर सम्भवतः घटी होगी।

वैदिक संहिताओं तथा ब्राम्हाणों में अनेक स्थलों पर ऋतु–सूचक तथा नक्षत्र–निदेशिकः वर्णनों का प्राचुर्य पाया जाता है। महाराष्ट्र के विख्यात ज्योतिविद पण्डित शंकरबालकृष्णय दीक्षित ने शतपथ–ब्राम्हण से एक महत्वपूर्ण वर्णन खोज निकाला है जिससे उस ग्रंथ के रचनाकाल के विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस वाक्य में कृत्तिकाओं के ठीक पूर्वीय बिन्दू पर उदय लेने का वर्णन है, जहां से वे तनिक भी च्युत नहीं होती –

''एक द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैत भूयिष्ठा यत् कृतिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात् कृतिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा

अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते'' ।

टाजकाल वे पूर्वीय बिन्दू से कुछ उत्तर की ओर हटकर उदय लेती हैं। अतः दीक्षित जी की गणना के अनुसार ऐसी ग्रहस्थिति 3000 वि.पू. में हुई होगी। जो शतपथ का निर्माण काल माना जा सकता है। तैतिरीय–संहिता–जिसमें कृतिका तथा अन्य नक्षत्रों का वर्णन है, निश्चय ही शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद तैतिरीय से भी पुराना है। अब यदि प्रत्येक के लिए 250 वर्ष का अंतर मान ले तो ऋग्वेद का समय 2500 वि.पू. से इधर का कभी नहीं हो सकता हैं। अतः दीक्षितजी के मठ में ऋग्वेद आज से लगभग 5500 (साढ़े पांच हजार) वर्ष नियमतः पुराना सिद्ध हो जाता है।

2.5 ऋग्वेद कालीन धर्म–संस्कृति एवं समाज

ऋग्वेद कालीन धर्म

ऋग्वेद का विपुलांश धार्मिक सामग्री से भरा है। वह युग धर्म की प्रधानता का था जिसका प्रमुख साधन यज्ञानुष्ठान था यज्ञ में देवता को प्रमुखता प्राप्त थी, इसलिये धार्मिक सूक्तों का अर्थ देवताओं का गुण–गान करने वाले सूक्तों के रूप में जो यजमानों का विविध फल देने के लिए प्रस्तुत किए गये है। इन सूक्तों में तीन प्रकार की ऋचाऐं मिलती है। परोक्षकृत प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। परोक्षकृत ऋचाओं के देवता का निर्देश प्रथम पुरुष में रहता है तथा देवता को सभी विभक्तियों में रखा जाता है। जैसे–अग्निमि के पुरोहितम् (ऋ० 1/1/1) इन्द्रोदिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः (18/89/10) इन्द्राय साम गायत (81/98/1) इत्यादि प्रत्यक्षकृत ऋचाओं में देवताओं को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः सम्बोधित किया जाता है कि तुम इन गुणों से युक्त हो मुझे ये पदार्थ दो मेरी रक्षा करो इत्यादि। जैसे–अग्ने ये यज्ञमध्वरम् (ऋ०1/1/4)। कहीं–कहीं स्तुति–कर्त्ताओं को भी प्रत्यक्ष मेकं सम्बोधित किया जाता है। आध्यात्मिक ऋचाओं में देवता स्वयं भाषण करते है। जैसे वागाम्भृणी सूक्त (ऋ० 10/125) मतें वाग्देवी स्वयं कहती हैं–अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चरामि इत्यादि। इन्द्रसुक्त में इन्द्र स्वयं कहते है।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामिशश्वतः।
मा हवन्ते पितरं जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजम्।।

धार्मिक सूक्तों में देवताओं को परमात्मा के विविध प्राकृतिक या आध्यात्मिक रूपों में देखा गया है। इसलिए प्राकृतिक उपादानों के वर्णन उनमें प्राप्त होते है। इस ऋचाओं का पाठ सोमरस के समर्पण अथवा अग्नि मे धृत की आहुतियों के साथ किया जाता था। देवताओं के साथ ऋग्वेदिक कर्मकाण्ड का अविच्छेद सम्बन्ध हैं देवताओं के आकार–प्रकार, परिधान, आभूषण और प्रिय खाद्य–पेय का वर्णन इन सूक्तों में मिलता है।

इन देवताओं के वासस्थान भी निरूपित है जो इनके वर्गीकरण के आधार है–पृथ्वी स्थान देवता, अन्तरिक्षस्थान देवता, द्युस्थान देवता।

पृथ्वी के निवासी देवताओं में प्रमुख अग्नि है और वृहस्पति, सोम, पृथ्विी नदी आदि अनय देवता है। अन्तरिक्ष के प्रमुख देवता वायु या इन्द्र हैं; शेष देवों में न्नितज्ञाप्त्य अपांन पात् मातरिश्वन्, अहिर्वृहध्न्य रूद्र, मरूत, पर्जन्य आदि है। द्युस्थानिक देवताओं में सूर्य को प्रमुख माना गया है अन्य देवता। धौस, वरुण, मित्र, सविता, पुषन, विष्णु, विवस्वत् आदित्यगण अश्विना (युग्म–देवता)। कुछ देवता शुद्ध स्त्री–रूप में कल्पित है
जैसे – सरस्वती, पृथीवि, रात्री, वाक्, इडा, इन्द्राणी, अग्यानी इत्यादि।

प्राकृति के विविध उपादानों के रूप में देवताओं की कल्पना होने के कारण उनकी प्राकृतिक शक्तियों का वर्णन धार्मिक सूक्तों में बहुधा प्राप्त होता है। सभी देवता महान्

और शक्ति–सम्पन्न है। वे प्रकृति के नियमों को व्यवस्थित तथा अनिष्ट तत्वों का विनाश भी करते है। देवताओं से ही मानव अपनी कामनाओं की पूर्ति की आशा करता है इसलिए अनेक देवताओं को 'वृषा' या 'वृषभ' कहा गया है। जिसका अर्थ है काम्य पदार्थों की वृष्टि करने वाला (कामान् वर्षतीति वृषभः)। देवता सत्य की प्रतिष्ठा करते है, कभी छल या व_चना नहीं करते। धार्मिक और सत्यनिष्ठ व्यक्तियों की रक्षा एवंम अपराधियों–पापियों को समुचित दण्ड देना भी उनका कार्य है। देवताओं के व्यक्तिगत लक्षण परस्पर मिश्रित हो गये जिससे एक तत्ववाद का विकास हुआ–एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋ० 1/164/46) फिर भी वैदिक कर्मकाण्ड की दृष्टि से यह एकत्ववाद जीवन–दर्शन नहीं बना क्यांकि यज्ञों में किसी एक देवता के आहुति देने से काम नहीं चल सकता था–वहाँ बहुदेव वाद ही प्रचलित रहा। यज्ञ की संस्था ऋग्वेद के धर्म का विशिष्ट अंग थी।

देवों के आकृति मनुष्य के समान के समान है। उनके शरीरिक अववयव अनेक स्थलों पर उन प्राकृतिक दृश्यों के रूपतामक प्रतिनिधि है जिनके वे वस्तुतः प्रतीक है। इस प्रकार सूर्य के बाहु उनके किरणों के अतिरिक्क्त कुछ नहीं और अग्नि की जिह्वा तथा अ" उसकी ज्वाला के द्योतक है। कुछ देवता योद्धा पुरुष है जैसे–इन्द्र और कतिपय यज्ञ कराने वाले ऋत्विज जैसे–अग्नि और बृहस्पति। देव रथ पर चढ़कर आकाश मार्ग में गमन किया करते है। इन रथों में विशेषतः घोड़े श्रूते रहते हैं देवताओं के योजन मानवों के समान दूध–दही, घी, अन्न, आदि है। उनका सबसे प्रिय पेय है सोमलता का उत्साह वर्धक रस। देवों का निवास स्वर्ग या विष्णु का तृतीय पद है जहाँ वे सोमरस का पान करते हुए आनन्द का जीवन विताते है।

ऋग्वेद इस विशाल ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार से जागरूक तथा नाना अभिव्यक्तियों में प्रकाशशील एक अचिन्त्य शक्ति का शाब्दिक उन्मेष है–वर्णमय विग्रह है। वह तर्क की कर्कश पद्धति पर व्याख्यात सिद्धान्तों का समुच्च नहीं अपितु वह प्रतिभाचक्षु से साक्षात्कृत तथ्यों का प्रशंसनीय पुंज है। ऋग्वैदिक युग के मनीषियों तथा लोकातीत आर्षचक्षुर्मण्डित द्रष्टाओं की वाणी में सार्वदेशिक तथा सार्वकालीक नैतिकता और धर्म की मूल प्रेरणाओं का स्फरण हो रहा हैं जो आजमी विश्व के मानवों सन्मार्ग पर ले जाने की क्षमता रखता हैं वैदिक ऋषियों की दृष्टि में धर्म ही जीवन यात्रा का मुख्य उपयोगी साधन है। 'सुगा श्रमृतस्य पन्थः' (श्रृ० 8/3/13) धर्म का मार्ग सुगम है 'सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् (ऋ० 9/73/1) सत्य का नाव धर्मात्मा को लगाती है। ऋग्वेद अध्यात्म के साथ व्यवहार का परलोक के साथ इहलोक के म_जुल साम_जुल अपने भव्य उपदेशों से प्रस्तुत करता है। वेद का सर्वातिशायी श्लाधनीय धर्म यज्ञ है। यज्ञ ही मानव को दूसरे मानव के प्रति मैत्री के सूत्र में बांधने वाला कर्म है। ऋग्वेद मनुष्यों को कर्मठ, देशभक्त तथा परोपकारी बनने की शिक्षा देता है वह स्वावलम्बी मानव के मूलमन्त्र का रहस्य वतलाता है। ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः (ऋ० 4/33/11) बिना स्वयं परिश्रम किये बिना देवों की मैत्री प्राप्त नहीं होती है।

ऋग्वेद का समाज और संस्कृति–

ऋग्वेद के मन्त्रों में प्राचीन वैदिक युग के समाज की अवस्था का चित्रण प्राप्त होता है। इस वेद में अधिसंख्यक मन्त्रों के देवता–वर्णन से सम्बद्ध होने के कारण धार्मिक सामग्री का बाहुल्य होने पर भी कतिपय लौकिक सूक्तों तथा ऋचाओं में उस युग के मानव का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन अंकित किया गया है।

ऋग्वेद में अंकित पारिवारिक जीवन संयुक्त परिवार की प्रथा पर आश्रित था। परिवार में माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पौत्र आदि सभी सम्बन्धी रहते थे। सभी सदस्य

गृहपति के संरक्षण में रहकर उसके आदेशों का पालन करते थे। पिता परिवार का गृहपति होता था। पत्नी का महत्व यज्ञानुष्ठान में विशेष रूप से था। उसी पर गृह–व्यवस्था, शिशु–पालन आदि का भी भार था। पति के अविवाहित भाई–बहनों पर भी उसका अधिकार होता था। सास–ससुर के प्रति बहू का सद्व्यवहार होने के कारण उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी। पुत्री को दुहिता कहते थे, उसका परिवार में बहुत आदर था फिर भी परिवार में पुत्र–प्राप्ति के लिए देवताओं की प्रार्थना की जाती थी। इससे पुत्र का विशेष महत्त्व सूचित होता है।

परिवारिक जीवन के विकास के लिए पच्चमहायज्ञ, संस्कार यम–नियम का पालन आवश्यक था। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (तर्पण–श्राद्ध), देवयज्ञ (हवन–पूजा), भूत–यज्ञ (मानवेतर प्राणियों को भोजन देना) तथा नृ–यज्ञ (अतिथि–सेवा)–ये पाँच महायज्ञ थे। इनसे आध्यात्मिक ऋणों को चुकाने की कल्पना की गयी थी।

स्माज में अपराध भी होते थे जैसे पशुओं की चोरी होती थी (पशुतृपं न तायुम्) चोरों के पकड़े जाने पर उन्हें कठोर दण्ड दिये जाते थे। जुआ खेलने की प्रथा थी। किन्तु जुआरियों का जीवन बड़ा गर्हित था। अक्ष–सूक्त (ऋग्वेद 10/34) में जुआ खेलने की घोर निन्दा करते हुए जुआरियों को खेती करने का उपदेश दिया गया है–अक्षैर्मा दीव्याः कृ षिमित् कृषस्व।

संस्कार

ऋग्वेद के युग में संस्कारों का महत्त्व स्वीकृत था। उनसे मानव–जीवन के परिष्कार की कल्पना की गयी थी। विद्याध्ययन के लिए उपनयन और गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए विवाह मुख्य संस्कार थे। विवाह के अवसर पर अभ्यागतों का स्वागत होता था। वधू का हस्त ग्रहण करके वर अग्नि की प्रदक्षिण करता था। विवाह–संस्कार के बाद वधू वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत होकर पति के साथ रथ पर चढ़कर ससुराल जाती थी। रथ को लाल रंग के पुष्पों से सजाया जाता था उसमें दो बैल जुते होते थे।

ऋग्वेद में मृत्यु–संस्कार का भी वर्णन मिलता है। शव के अग्नि–दाह की अथवा भूमि में दबाने की प्रथा थी।

आवास– इस वेद के अनुसार तात्कालिक आर्यों के गृह मिट्टी के बने होते थे। उसमें चार भाग होते थे–अग्निशाला (पूजा–हवन का कक्ष), हविर्धान (भण्डागार), पात्नीसदन और सद्स। सदस् पुरुषों की बैठक का कक्ष था। इसी में अभ्यागत लोगों का स्वागत किया जाता था। बैठने के लिए आसन और शयन के लिए शय्या होती थी। नव–विवाहित वर–वधू के शयनार्थ बहुमूल्य पलंग होती थी जिसे 'तल्प' कहते थे। (आरोह तल्पम्)। 'प्रोष्ठ' काष्ठ का आसन था जिस पर स्त्रियाँ बैठती और लेटती थी। ऋग्वेद में घरेलू उपकरणों के भी नाम मिलते हैं जैसे–कलश, द्रोण, चषक, स्थाली (बटलोई), तितउ (चलनी), मुसल इत्यादि।

परिधान

ऋग्वेद–काल में सामान्यतः दो वस्त्र पहने जाते थे–अधोवस्त्र और उत्तरीय। ये वस्त्र ऊन से बनते थे। कुछ वस्त्रों में 'जरी' (स्वर्ण) का काम होता था जिन्हें 'पेशस्' कहा जाता था गले में निष्क (हार) और रुक्म (धागे में लटकाकर पहना गया स्वर्णाभूषण) पहने जाते थे। इसी प्रकार कंकण, कर्णाभूषण, मोतियों की माला इत्यादि पहनने की प्रथा थी। लोग केशां में तेल लगाकर या बिना तेल के ही उन्हें सवाँरते थे।

भोजन

ऋग्वेद–युग के आर्यों का प्रमुख भोजन जौ की रोटी दूध–दही था। जौ का सत्तू भी बनता था जो आर्यों का प्रिय भोजन था। अपूप, करम्भ (माँड़ या आटे का घोल), सत्तू और पुरोडाश (रोटी)–ये आर्यों के स्वादु भोज्य पदार्थ थे। दूध प्रधान पेय था। आर्यो में दही, मक्खन आदि का प्रचुर प्रयोग था। यज्ञों में सोमरस का प्रयोग होता था। इसकी कटुता (या तिवतता) हटाने के लिए लोग उसमें दूध, दही या जौ का चूर्ण मिलाते थे जिससे क्रमशः सोमरस को गवाशीः दध्याशीः और यवाशीः कहते थे (आशीः= दोषनाशक) सोमरस के पान से स्फूर्ति आती थी। इस प्रकार परिधान तथा भोजन की दृष्टि से लोग सुखी, सम्पन्न तथा प्रसन्न थे।

वर्णाश्रम–व्यवस्था

ऋग्वेद–काल में समाज को पुरुष का रूपक देकर उसके चार अंगों के रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की कल्पना की गयी थीं–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासदी् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रों अजायत।। (10/90/10)

किन्तु ऋग्वेद के मुख्य भाग में वर्णगत कर्मव्यवस्था की सूचना नहीं मिलती; कभी–कभी एक ही परिवार में पुरोहित, वैद्य और सत्तू पीसने के व्यवसायों का अस्तित्व मिलता है। फिर भी समाज में वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और तपस्या करने वाले ब्राह्मणों का प्राधान्य था। क्षत्रिय (क्षत्र, राजन्य) का कार्य राष्ट्र की रक्षा और प्रजा–पालन करना था। वैश्य के लिए 'विशः' (=प्रजा) शब्द का विशेष प्रयोग है जो कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि सामानय व्यवसायों से अर्थोपार्जन (समाज की अर्थव्यवस्था) करने वाली प्रजा का परिचायक है। शूद्र या दास वर्ण इन्हहीं की सहायता करता था। शिल्पकार्य में दास प्रवीण होते थे। जो कोई नास्तिक, यज्ञविरोधी या चरित्रहीन होते थे उन्हें दास या दस्यु की श्रेणी मिल जाती थी।

जीवन को चार आश्रमों में विभाजित करने का कार्य ऋग्वेद में आरम्भ हो चुका था। ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्ययन, गृहस्थ आश्रम में महायज्ञों का अनुष्ठान, वानप्रस्थ होने पर सभी कामनाओं का त्याग और संन्यासी होने पर सभी बन्धनों से मुक्ति का पवित्र लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

नारी की दशा–

ऋग्वेद के युग में नारी को गृहिणी कहा जाता था (जायेदस्तम्)। गृह का पूरा भार (क्रिया–कलाप) उसी पर आश्रित था। नारी का मातृ–रूप अमृत के समान था। पत्नी पति की आदर्श सहचरी थी। पति–पत्नी के सौमनस्य और साहचर्य के कारण ऋग्वेद–काल में नारी की गाौरव प्राप्त था। उस युग में स्त्री शिक्षा का विशेष प्रचार था। स्त्रियाँ न केवल वेद पढ़ती थीं अपितु मन्त्रां की रचना (या साक्षात्कार) करने में भी समर्थ थीं। रोमशा, गोधा, उर्वशी घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, सूर्या इत्यादि इक्कीस ऋषिकाओं के मन्त्र ऋग्वेद–संहिता में संकलित है। कुछ स्त्रियाँ संगीत और नृत्य में भी निपुण थीं। स्त्रियों का विवाह यद्यपि मुख्यतः पिता की इच्छा से होता था किन्तु स्वयंवर–विवाह का भी प्रचलन था। पत्नी से दस पुत्रों की कामना रहती थी (दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि 10/85/45)। अभ्रातृका कन्या से विवाह करने में लोग हिचकिचाते थे क्योंकि उसकी सन्तान मातृकुल से अपना लगाव अधिक रखती थी।

धार्मिक स्थिति–

ऋग्वेद में धर्म के दो पक्ष मिलते हैं–श्रद्धा और यज्ञानुष्ठान। देवताओं की स्तुतियों

में ऋषियों की श्रद्धा प्रकअ हुई है। देवताओं के प्रति श्रद्धा और भक्ति उस युग के धार्मिक जीवन की विशिष्ठता रही है। उन देवताओं के तीन वर्ग माने गये थे–द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय तथा पृथिवीस्थानीय। प्रत्येक वर्ग में ग्यारह देवता सम्बद्ध किये गये थे। इनमें कुछ देवता आधिभौतिक हैं जैसे–अग्नि, सूर्य, पर्जन्य आदि। कुछ का आधिदैविक रूप है, इन्हें अपनी इन्द्रियों से नहीं देख सकते जैसे–इन्द्र, उषा, सविता आदि। कुछ का रूप आधात्मिक है जैसे–अग्नि, सूर्य, पर्जन्य आदि। कुछ आधिदैविक रूप है, इन्हें अपनी इन्द्रियों से नहीं देख सकते जैसे–इन्द्र, उषा, सविता आदि। कुछ का रूप आध्यात्मिक है जैसे–सरस्वती, वाक्, मन्यु आदि। ऋग्वेद का धार्मिक जीवन अधत्मवाद से प्रभावित था। यज्ञ को धर्म का पर्याय माना गया था। पुरुषसूक्त में कहा गया है–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवस्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् (10/90/16)

यज्ञ को ईश्वर का रूप मानते थे जिसमें कर्म और भक्ति का समन्वय होता था। यज्ञानुष्ठान का आयोजन भव्य होता था। उसे ऋत्विजों की संख्या सँभालती थी–होता, उद्गाता, अध्वुर्य और ब्रह्मा। ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्रों को 'होता' ही यज्ञ में पढ़ता था जिनसे किसी कर्म में नियत देवताओं का आवाहन होता था।

राजनीतिक स्थिति–

ऋग्वेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस युग में राजनीतिक दृष्टि से समाज के पाँच स्तर थे–कुल (गृह या कुटुम्ब), ग्राम, विश्, जन तथा राष्ट्र। कुल का स्वामी गृहपति था। कई कुलों को मिलाकर 'ग्राम' बनता था जिसका प्रधान 'ग्रामीण' कहा जाता था। अपने ग्राम की रक्षा, संगठ, शान्ति, न्याय और दण्ड की व्यवस्था वही करता था। उसकी सहायता के लिए ग्राम–सभा होती थी, वही ग्रामीण का चयन भी करती थी। कई ग्रामों से 'विश्' बनता था जिसका अध्यक्ष 'विश्पति' होता था। ग्रामों का पारस्परिक सम्बन्ध वही बनाये रखता था। विशों का समुदाय 'जन' होता था जिसका प्रधान 'जनपति' होता था। उस युग में पाँच प्रमुख जनों का (प_च जनाः) निर्देश मिलता है। अनेक जनों से 'राष्ट्र' बनता था। उसका स्वामी राजा या राष्ट्रपति होता था राजा का कार्य राष्ट्र की रक्षा, शत्रुओं का नाश तथा राष्ट्र की श्रीवृद्धि करना था।

शासन की दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं–राजतन्त्र और प्रजातन्त्र। राजतन्त्र में वंशानुगत राष्ट्राध्यक्ष होता था किन्तु प्रजातन्त्र में उसका चुनाव होता था। दोनों स्थितियों में अध्यक्ष का अभिषेक होता था। राज्य–संचालन के लिए सभा और समिति दो संस्थाएँ थीं। सभा छोटी और समिति बड़ी संस्था थी। समिति को अधिकार था कि वह योग्य राजा को हटाकर नये राजा को स्थापित करे।

आर्थिक स्थिति

उस समय का आर्थिक जीवन कृषि, पशुपपालन, वाणिज्य, व्यापार और उद्योग–धन्धों पर आश्रित था। कृषि के योग्य भूमि को खेतों में परिवर्तित किया जाता था। खेती करने वालों को ऋग्वेद में 'कीनाश' कहते थे। ये लोग हलों से भूमि की जुताई करते थे–

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियुन्त वाहैः। (ऋग्वेद 4/57/9)

बीज बोने के बाद खेत की सिंचाई भी की जाती थी। इसके लिए नहर (कुल्या), नदी, सरोवर, कूप आदि का प्रयोग होता था। अन्नों में यव, गेहूँ धान, चना, माष (उड़द) और तिल प्रमुख थे।

पशु–पालन भी अर्थव्यवस्था में महत्त्व रखता था। लोग गायें पालते थे जिनसे

वस्तुओं का क्रय–विक्रय भी किया जाता था। भेंड़ों और बकरियों को भी (अजावयः) लोग घरों में पालते थे। अश्व का उपयोग मुख्यतः युद्धों में होता था। सामान ढोने के लिए तथा हल में जोतने के लिए बैलों का प्रयोग होता था।

वाणिज्य–व्यपार उस युग का प्रमुख व्यवसाय था। व्यापारी के लिए वाणिक या पणि शब्द का प्रयोग मिलता है। अन्न का व्यापार प्रमुख रूप से होता था जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा कर बेचा जाता था। वस्तु–विनिमय प्रणाली (Barter System) के अन्तर्गत गायों को इकाई के रूप में (मूल्य मानकर) खरीद–बिक्री होती थी। पणि लोग नावों से भी सामान की ढुलाई (परिवहन) करते थे। उद्योग के रूप में वस्त्र–निर्माण, रथ–निर्माण, आभूषण और शस्त्र बनाना प्रमुख थे। बढ़ई (तक्षन्), हिरण्यकार, चर्मकार, भिषंक्, कारु (शिल्पी या संगीतज्ञ), तन्तुवाय आदि व्यवसायियों का उल्लेख इस वेद में मिलता है। इस प्रकार ऋग्वेद के युग में समाज का वैविध्यपूर्ण चित्र प्राप्त होता है। भारतीय इतिहास में साहित्यिक सामग्री के आधार पर सर्वाधिक स्पष्अ चित्र हमें पहली बार ऋग्वेद में ही मिलता है। यह वस्तुतः हमारे देश का ग्रन्थरत्न है।

बोध प्रश्न –

1. ऋग्वेद की रचना 1200 विक्रमपूर्व माना है।

(क) लोकमान्य तिलक ने   (ख) मैक्समूलर ने
(ग) हन्ट ने   (घ) विक्रमादित्य ने

2. लोकमान्य तिलक ने ऋग्वेद का समय माना है।

(क) 6000–4000 वि०पू०   (ख) 4000–2500 वि०पू०
(ग) 2400–1400 वि०पू०   (घ) 1400–5000 इ०पू०

3. ऋग्वेदीय काल में वस्त्र पहने जाते थे।

(क) केवल अधोवस्त्र   (ख) केवल उत्तरीय
(ग) दोनों   (घ) दोनों में से कोइ नहीं

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(क) दीक्षित जी अनुसार ग्रह स्थिति का समय ....वि०पू० था
(ख) उर्वशी के साथ ....की प्रणय गाथा है।
(ग) विश्वामित्र नदी संवाद का वर्णन.............................में किया गया है।

5. निम्नलिखित वाक्यों में सही वाक्य के समक्ष (√) का चिन्ह तथा गलत के समक्ष (×) का चिन्ह लगायें?

(क) यज्ञेन यज्ञमयजन्त.........................सामवेद का मन्त्र है ।   ( )
(ख) शुनः शेप आख्यान ऋग्वेद में वर्णित है।   ( )
(ग) 'द्वाज' का अर्थ दो से उत्पन्न सन्तान होता है।   ( )

2.6 सारांश

भारतीय सभ्यता का मूल स्रोत वेद ही है। वेद की महत्ता का निर्धारण तो मुश्किल है कि उसके समय का निर्धारण की उतना ही मुश्किल है। मैक्समूलर, लोक–मान्य बाल गंगाधर तिलक, के साथ–साथ अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के द्वारा इसके समय का निर्धारण करने का प्रयास किया जाता है, परन्तु निश्चित मत नहीं मिल पाता सर्वप्रथम रचित वेद ऋग्वेद पर विद्वानों द्वारा दीये गये मतों को इस इकाई के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जिसका अध्याय कर ऋग्वेद के समय का निर्धारण कर सकेगे।

इस इकाई के माध्यम से ऋग्वेद के समय में दिये गये अनेक विद्वानों का मत

जान सकेगे तथा तत्कालीन धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था से भी परिचित हो सकेगी। जिससे की आप ऋग्वेद कालीन समस्याओं से उभर कर अपनी प्रतिभा चक्षु का और ऊपर तक ले जा सकेगें।

2.7 शब्दावली

भावाभिव्यंज्क–भावो की अभिव्यंना
चतुःसमुद्र–चारो समुद्र
अर्थोपार्जन–धनकी प्राप्ति
अधोवस्त्र–उपर का वस्त्र
उत्तरीय–दुपट्टा

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) (ख)
(2) (क)
(3) (ख)
4 (क) 3000 वि०पू० (ख) पुरुरवा (ग) ऋग्वेद
5 (क) (×) (ख) (√) (ग) (√)

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) आचार्य वलदेव उपाध्याय–वैदिक साहित्य एवं संस्कृति
(2) संस्कृत वाड्.मय का वृहद् साहित्य (वेदखण्ड)–पद्मभूषण आचार्य श्री वलदेव उपाध्याय

2.10 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

(1) वेद भाष्य भूमिका–संग्रह
(2) आचार्य शायण और माधव–आचार्य वलदेव उपाध्याय
(3) भाव्य भूमिका–स्कन्द स्वामी

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) ऋग्वेद कालीन धर्म एवं समाज तथा संस्कृति की विवेचना कीजिए।
(2) ऋग्वेद का समय निर्धारित कीजिए?